Year-70, Volume-4
Oct. - Dec. 2017

RNI No. 10591/62
ISSN 0974-8768

अनेकान्त

जैनविद्या एवं प्राकृत भाषाओं की समीक्षित शोध पत्रिका

ANEKANTA

A Peer Reviewed Quarterly Research Journal for Jainology & Prakrit Languages

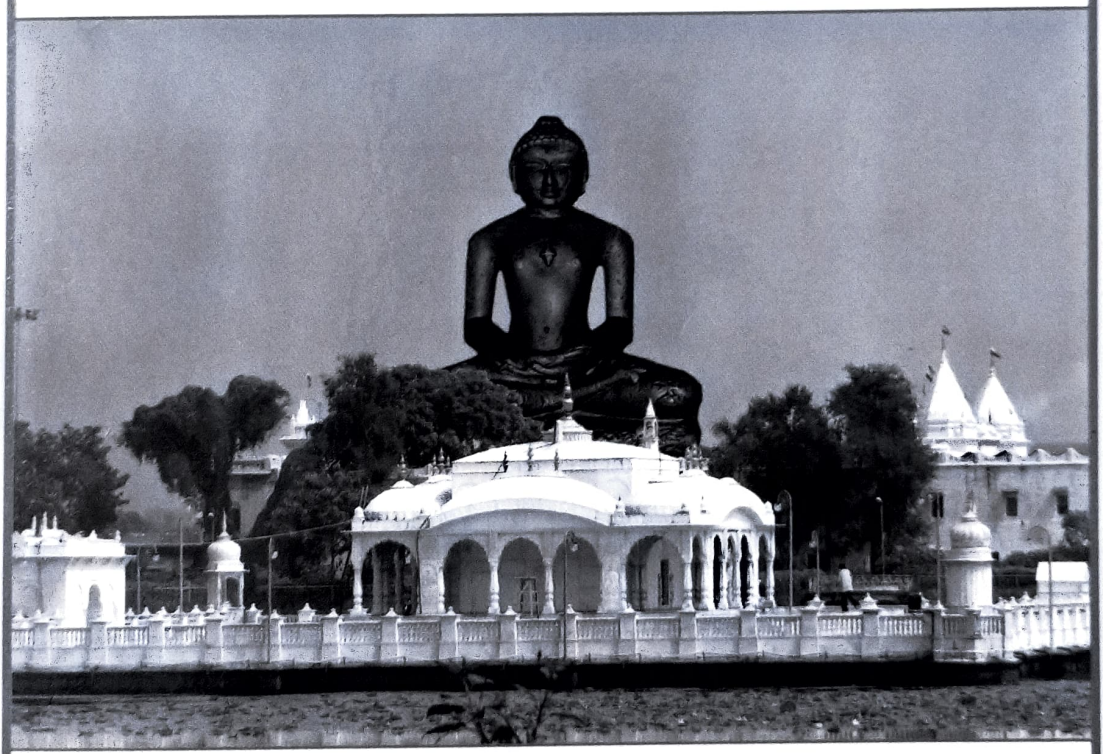

श्री 1008 सिद्धक्षेत्र पावापुरी जी

वीर सेवा मन्दिर, नई दिल्ली - 110 002
Vir Sewa Mandir, New Delhi-110 002

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1. युगवीर-गुणाख्यान	-संपादक	5-7
2. जैनदर्शन में आत्मा का पारिणामिक स्वरूप समयसार देशना के सन्दर्भ में	-प्रो. प्रेमसुमन जैन	8-21
3. वट्टकेराचार्य का मूलाचार : एक दार्शनिक अनुशीलन	-डॉ. दिलीप धींग	22-35
4. आचार्य मानतुंग कृत भक्तामर स्तोत्र में अलंकार योजना	-अभिषेक जैन	36-41
5. जैनदर्शन के आलोक में पुण्य पाप मीमांसा	-डॉ. ज्योतिबाबू जैन	42-49
6. JAIN SADHNA AND ISLAMIC IBAD'AT : WITH SPECIAL REFERENCE TO PREKSHA MEDITATION AND SALAT	- Dr. Mohd. Habib	50-55
7. भारत में प्रचलित लिपियों में ब्राह्मी लिपि का योगदान	-कल्पना जैन	56-65
8. तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'श्रुतम्' पद : एक विवेचन	-प्रो. कमलेशकुमार जैन	66-69
9. प्राकृत ग्रन्थ णीदी-संगहो एक अनुशीलन	-आशीष कुमार जैन	70-74
10. जैन वाङ्मय में हनुमान का जन्म और नामों की सार्थकता	-डॉ. विकास चौधरी	75-81
11. नैतिकता एवं अध्यात्म से वास्तविक मानव का विकास	-डॉ. वीरेन्द्र जैन	82-90
12. सांख्याभिमत पुरुष-प्रमेय का तुलनात्मक अध्ययन	-डॉ. प्रीतम सिंह	91-96

जैनदर्शन के आलोक में पुण्य-पाप मीमांसा

- डॉ. ज्योतिबाबू जैन

आत्मा की शुभ रूप प्रवृत्ति और अशुभ रूप प्रवृत्ति को मन, वचन, काय रूप योग को आस्रव के अन्तर्गत रखा गया है। योगों की प्रवृत्ति शुभ रूप होती है, तो शुभ कर्म परमाणु और अशुभ रूप होती है तो अशुभ कर्म परमाणु आत्मा के साथ बद्ध होते हैं। शुभ योग पुण्य एवं अशुभ योग पाप के आस्रव के कारण हैं।

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य

मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया से आत्म प्रदेशों में जो कम्पन होता है उससे कर्म परमाणु कर्म रूप में आत्मा के साथ बद्ध होते हैं। आत्मा की शुभाशुभ भाव रूप प्रवृत्ति भाव पुण्य और भाव पाप हैं। प्रवृत्ति के पश्चात् जो आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों का सम्बन्ध होता है वह द्रव्य पुण्य पाप है। भावपाहुड में कहा है-

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहि सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो।।[1]

पूजा आदि शुभ कार्यों में व्रत सहित प्रवृत्ति करना पुण्य है। ऐसा जिनमत में जिनेन्द्र देव ने कहा है और मोह तथा क्षोभ से रहित आत्मा का जो परिणाम है वह धर्म है। वीतराग जिनेन्द्र देव की पूजा करना, निर्ग्रन्थ गुरु आदि सत्पात्रों के लिए दान देना तथा श्रावकों के व्रत पालन करना आदि शुभ कार्य पुण्य कार्य कहलाते हैं। जिनशासन के उपासकाध्ययन नामक अंग में इस पुण्य को करने का आदेश दिया है।

पुण्य-

सम्यग्दर्शन, व्रत, कषायों का निग्रह एवं इन्द्रिय निग्रह से जो कर्म बन्ध होता है वह पुण्य कर्म है। जो आत्मा को पवित्र करे व जिससे आत्मा पवित्र की जाती है वह पुण्य कहलाता है।[2]

स्वतंत्र विवक्षा से जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य में निष्पन्न पुण्य शब्द है पारतन्त्र्य विवक्षा से करण साधन से निष्पन्न पुण्य शब्द है। जैसे जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है वह पुण्य है।[3] इष्ट पदार्थों की प्राप्ति जिससे होती है वह कर्म पुण्य है। शुभ परिणाम पुण्य बन्ध का कारण होने से पुण्य कहे जाते हैं।[4]

सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने शुभ भावयुक्त जीव को पुण्य और अशुभ भाव युक्त जीव को पाप कहा है। अहिंसा आदि व्रतों का पालन करना शुभोपयोग है, इसमें प्रवृत्त जीव के शुभ कर्म का जो बन्ध होता है वह पुण्य है। समयसार में पुण्य दो प्रकार का बताया है- पुण्यानुबन्धी पुण्य और पापानुबन्धी पुण्य।

पुण्यानुबन्धी पुण्य- कोई सम्यग्दृष्टि जीव निर्विकल्प समाधि का अभाव होने के कारण अशक्यानुष्ठान रूप विषय कषायों से बचने के लिए व्रत, शील, दान और पूजन आदि शुभ कार्य करता है, परन्तु भोगों की आकांक्षा रूप निदान नहीं करता। अतः उसका वह कर्म पुण्यानुबन्धी पुण्य है।

पापानुबन्धी पुण्य- कोई एक जीव नवीन पुण्य कर्म के निमित्तभूत शुभकर्मों को भोगों की आकांक्षा के निदान स्वरूप करता है, तब वह पापानुबन्धी पुण्य कालान्तर में उसे भोग प्रदान करता है एवं वह निदान कर नरक आदि दुखों की परम्परा प्राप्त करता है।[5]

पुण्य बन्ध के कारण-

जिस जीव के प्रशस्त राग और अनुकम्पा के आश्रित दया रूप भाव है तथा जिसके चित्त में कलुष रूप परिणाम नहीं है उस जीव के पुण्य का आस्रव होता है।[6]

सम्यग्दर्शन के साथ आठ मूलगुण, पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, रात्रि में भोजन का परित्याग, छने जल को पीने तथा शक्ति के अनुसार मौनव्रत आदि यह सब आचरण भव्य जीवों के लिए पुण्य का कारण है।[7]

पुण्यं जिनेन्द्रचरणार्चनसाध्यमाद्यं पुण्यं सुपात्रगतदानसमुत्थमेतत्।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात् पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम्।।[8]

जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की पूजा से प्राप्त होने वाला पहला पुण्य है, सत्पात्र के लिए दिए हुए दान से उत्पन्न होने वाला दूसरा पुण्य है, व्रतों का पालन करने से उत्पन्न होने वाला तीसरा पुण्य है तथा उपवास से होने वाला चौथा पुण्य है। पुण्य के अभिलाषी मनुष्यों को उक्त चार प्रकार से पुण्य का उपार्जन करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र यद्यपि स्वभाव से मोक्ष के कारण हैं, परन्तु यदि पंचपरमेष्ठी आदि प्रशस्त द्रव्यों के आश्रित हों तो साक्षात् पुण्य बन्ध के कारण होते हैं।

पाप-

पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम्। पुण्य का प्रतिद्वन्द्वी पाप है जो आत्मा की शुभ से रक्षा करे अर्थात् आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे, वह पाप कहलाता है, वह असाता वेदनीय आदि पापकर्म है।[9] अशुभ वेदनीय आदि के कारण जो अव्रतादि भाव है, उसको शास्त्र में पाप कहा गया है। अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति जिससे होती है ऐसे कर्म को पाप कहते हैं। अशुभ परिणाम पाप है।

पाप बन्ध के कारण-

बहुत प्रमाद सहित क्रिया, चित्त मलिनता और इन्द्रियों के विषयों में प्रीति पूर्वक चपलता, अन्य जीवों को दुख देना, अन्य की निन्दा करना, बुरा बोलना आदि आचरणों से जीव का पाप आस्रव करता है। तीव्र मोह के फल से चार संज्ञा, तीन अशुभ लेश्या, इन्द्रियों के अधीन होना तथा आर्त्त-रौद्र ध्यान, सत्क्रिया के अतिरिक्त असत्क्रियाओं में ज्ञान का लगाना तथा दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय कर्म के समस्त भाव पाप रूप आस्रव के कारण होते हैं।

पुण्य पाप का फल-

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा।।

पूर्वकृत पुण्य कर्मों से तीर्थंकर प्रकृति रूप अवस्था प्राप्त होती है। अर्हन्त अवस्था में शरीर एवं वचन की क्रियाएं, कर्मों के उदय से होने के कारण औदायिकी होती हैं, परन्तु वह क्रियाएं मोह-रागद्वेष भावों से रहित

होने के कारण क्षायिकी होती है। अतः केवलज्ञानी की विहार आदि क्रियाएं बन्ध रहित होती हैं।[10]

तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।[11]

पुण्य के बिना चक्रवर्ती के समान अनुपम रूप सम्पदा, अभेद्य शरीर का बन्धन, अतिशय उत्कट निधि, रत्नों की ऋद्धि, हाथी, घोड़े आदि का परिवार तथा इसी प्रकार अन्तःपुर का वैभव आदि कैसे प्राप्त हो सकते हैं।

पुण्य के फल से अन्धा भी निर्मल नेत्रों का धारक हो जाता है, वृद्ध भी युवा हो जाता है, निर्बल भी सिंह जैसा बलिष्ठ हो जाता है, विकृत शरीर भी कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। जो भी प्रशंसनीय अन्य समस्त पदार्थ यहां दुर्लभ प्रतीत होते हैं वे सब पुण्योदय से प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु पाप के प्रभाव से महावत की अपेक्षा हाथी बलवान होने पर भी महावत उनको बांधते हैं उनके ऊपर चढ़ते हैं अंकुश मारते हैं, बोझा लादते हैं, उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाते हैं, गालियाँ देते हैं, उन हाथियों को यह सब बातें सहन करना पड़ती हैं। इसी प्रकार उत्तम पुरुषों पर नीच पुरुष भी अपना प्रभाव डालते हैं। अतः ये समस्त चेष्टाएं पाप कर्म ही हैं। अर्थात् पाप के द्वारा ही ये सब बातें होती हैं, इसलिए भव्यों को पुण्य का ही उपार्जन एवं पाप का नाश करना चाहिए।[12]

किसी कवि ने कहा है-

एक महल पर सुख से खेले,
एक सड़क पर सोता है,
जीवन चलता साथ किसी के
कोई जीवन ढोता है।

मोक्ष पाहुड में कहा है-

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥[13]

जो पाप से मोहित बुद्धि मनुष्य जिनेन्द्रदेव का लिंग धारण कर पाप करते हैं, वे पापी मोक्षमार्ग से पतित हैं।

अन्यलिंगकृतं पापं जिनलिंगेन मुच्यते।
जिनलिंगंकृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

जो पांच प्रकार के वस्त्रों में आसक्त हैं, परिग्रह को ग्रहण करने वाले हैं, याचना करते हैं तथा निन्द्य पाप कर्म में रत हैं वे मुनि मोक्षमार्ग से त्यक्त हैं अर्थात् पतित हैं। जो मुनि जिनमुद्रा दिखाकर धन की याचना करते हैं वे माता को दिखाकर भाड़ा ग्रहण करने वालों के समान हैं।

लिंगपाहुड में कहा है कि जिसकी बुद्धि पाप से मोहित हो रही है ऐसा पुरुष जो जिनलिंग दिगम्बर वेष को धारण कर लिंगी यथार्थ भाव की हंसी करता है वह सच्चे वेषधारियों के वेष को नष्ट करता है। जो मुनि होकर भी नृत्य करता है, गाता है और बाजा बजाता है, पापी पशु है, मुनि नहीं। मुनि होकर भी जो नाना प्रकार के प्रयत्नों से परिग्रह को इकट्ठा करता है, उसकी रक्षा करता है तथा उसके निमित्त आर्त ध्यान करता है उसकी बुद्धि पाप से मोहित है, उसे पशु समझना चाहिए मुनि नहीं।

जो ऊँचा पद धारण कर कुकृत्य करता है, वह पापी नियम से नरकगामी होता है। पाप से जिसका यथार्थ भाव नष्ट हो गया है, ऐसा पुरुष मुनिलिंग धारणकर भी अब्रह्म का सेवन करता है, वह पाप से मोहित बुद्धि होता हुआ संसाररूपी अटवी में भ्रमण करता है।[14]

इस प्रकार मूलसंघ के कठोर प्रशासक आचार्य कुन्दकुन्द की अमर कृति अष्टपाहुड में मुनियों के शिथिलाचार के विरुद्ध जो सशक्त आवाज उठाई गई है वह वर्तमान में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रही है, क्योंकि आज समृद्धि और सुविधाओं के मोह से शिथिलाचारी मुनि एवं स्वार्थी श्रावकों द्वारा अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए साधुवर्ग में व्याप्त अनेक पापमय प्रवृत्तियों को भरपूर संरक्षण दिया जा रहा है जिसका कथन अशक्य है।

पुण्य-पाप की हेय उपादेयता-

आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में कहा है कि लोग अशुभ को कुशील और शुभ को सुशील कहते हैं, परन्तु वह सुशील शुभ कैसे हो सकता है जो जीव को इस संसार में प्रविष्ट करता है उससे बाहर नहीं निकलने देता। बंधन की अपेक्षा स्वर्ण और लोहे दोनों की बेड़ियाँ समान हैं, जो बंधन से मुक्त होना चाहता है उसे स्वर्ण की बेड़ी भी तोड़नी

होगी। आचार्य योगेन्दुदेव कहते हैं कि-

पुण्णेण होई विहवो, विहवेण मओ मएण मइमोहो।
मइ मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह मा होऊ॥

पुण्य से वैभव, वैभव से अहंकार और अहंकार से बुद्धि का नाश और बुद्धि नाश से पाप होता है और वह पुण्य हमें नहीं चाहिए।

पुण्य और पाप दोनों ही समान रूप से संसार के कारण हैं इसलिए निश्चय नय से उनमें विशेषता नहीं है। परन्तु जब शुद्धात्मानुभूति स्वरूप तीन गुप्ति से गुप्त वीतराग निर्विकल्प समाधि को पाकर ध्यान में मग्न हुए ज्ञानी पुण्य-पाप को समान जानते हैं, जब तो जानना योग्य है परन्तु जो मूढ़ नर समाधि को न पाकर भी गृहस्थ अवस्था में दानपूजा आदि शुभ क्रियाओं को छोड़ देते हैं और मुनिपद में छह आवश्यक कर्मों को छोड़ देते हैं वे दोनों ओर से भ्रष्ट हैं, न यति हैं न श्रावक। वे निंदा योग्य हैं तब उनको दोष ही है ऐसा ही जानना।

पाप-पुण्य की हेयता की दृष्टि से जैन परम्परा एकमत है, परन्तु उपादेयता में विभिन्न दृष्टियां हैं। कई आचार्यों ने पुण्य को मोक्ष का परम्परा हेतु स्वीकार किया है। जिनागम का कथन नय सापेक्ष होता है। अतः शुद्धोपयोग की अपेक्षा शुभोपयोग रूप पुण्य को त्याज्य कहा है, परन्तु अशुभोपयोगरूप पाप की अपेक्षा उसे उपादेय बताया गया है। शुभोपयोग में यथार्थ मार्ग जल्दी मिल सकता है, परन्तु अशुभोपयोग में उसकी संभावना ही नहीं है। जैसे प्रातःकाल सम्बन्धी सूर्यलालिमा का फल सूर्योदय है और सायंकाल सम्बन्धी सूर्यलालिमा का फल सूर्यास्त है। इसी आपेक्षिक कथन को अंगीकृत करते हुए श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने मोक्षपाहुड में कहा है-

वरं वयतदेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरय इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं॥

और इसी अभिप्राय से पूज्यपाद स्वामी ने भी इष्टोपदेश में व्रताचरण से होने वाले दैवपद को कुछ अच्छा कहा है और अशुभोपयोगरूप पापाचरण से होने वाले नारकपद को बुरा कहा है-

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत् नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।।

अर्थात् व्रतों से देवपद पाना कुछ अच्छा है, परन्तु अव्रतों से नारक पद पाना अच्छा नहीं है, क्योंकि छाया और धूप में बैठकर प्रतीक्षा करने वालों में महान् अन्तर है।

अशुभोपयोग सर्वथा त्याज्य ही है, परन्तु शुभोपयोग पात्रभेद की अपेक्षा हेय और उपादेय दोनों रूप है। किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने सम्यग्दृष्टि के पुण्य को मोक्ष का कारण बताया है और मिथ्यादृष्टि के पुण्य को बंध का कारण। उनका यह कथन भी नय विवक्षा से संगत होता है।

अध्यात्म की दृष्टि से पुण्य और पाप ये दोनों बंधन हैं। जैनदर्शन ने पुण्य-पाप के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। मीमांसा दर्शन ने पुण्य साधना पर अत्यधिक बल दिया है। उन्होंने पुण्य को जीवन का ध्येय माना है, किन्तु जैनदर्शन ने पुण्य को अपेक्षा दृष्टि से हेय, ज्ञेय और उपादेय तीनों माना है।

निश्चय की दृष्टि से पुण्य और पाप दोनों हेय हैं। पुण्य सुहावना है और पाप असुहावना है। लोहे की बेड़ी क़ाली होने से भद्दी लगती है और सोने की बेड़ी चमकदार होने से सुहावनी लगती है। सोने की बेड़ी में चमक-दमक होने पर भी बंधन तो है ही। वह व्यक्ति को बांधकर रखती है। तलवार स्वर्ण की बनी हुई है इतने मात्र से उसमें कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि स्वर्ण की होने पर भी प्राण नाशक तो है ही। पुण्य को आज की भाषा में प्रथम श्रेणी का कारावास कह सकते हैं और पाप को कठोर कारावास। मोक्ष प्राप्ति के लिए दोनों त्याज्य हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से पाप की अपेक्षा पुण्य श्रेष्ठ है; चूंकि पाप से नरक आदि वेदनाएं प्राप्त होती हैं, लोक में निन्दा, अपयश और कष्ट प्राप्त होता है जबकि पुण्य से स्वर्गीय एवं कमनीय सुखों की प्राप्ति होती है, इस लोक में भी यश मिलता है। जैसे विश्राम करने के लिए चिलचिलाती धूप में बैठने के बजाय, वृक्ष की शीतल छाया में बैठना सुखदायी होता है। वैसे ही जीवन में पाप की अपेक्षा पुण्य श्रेष्ठ है।

संदर्भ :

1. भावपाहुड गा. 81
2. सर्वार्थसिद्धि, 614
3. राजवार्तिक 4, आचार्य अकलंक
4. प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति
5. समयसार तात्पर्यवृत्ति 240-243
6. पंचास्तिकाय गाथा 135
7. पद्मनंदि पंचविंशतिका, 7/5
8. भावपाहुड, गाथा 81 टीका
9. राजवार्तिक, 5
10. प्रवचनसार 1/45
11. धवला पु. 1/106
12. पद्मनंदि पं. वि. 1/189-90
13. मोक्षपाहुड गाथा 78
14. लिंगपाहुड गाथा, 3-7
15. परमात्मप्रकाश अ. 2, गाथा-55 एवं टीका।

-सहायक आचार्य,
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग,
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राजस्थान)

अहिंसा का अनूठा उदाहरण

अहमदाबाद, सूरत, बडोदरा, राजकोट आदि अनेक शहरों में जैन युवकों द्वारा 10000 से अधिक जीवों को 1.5 करोड़ रुपए का भुगतान करके कुर्बान होने से बचाकर अहिंसा का एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। जीवों को कुर्बानी से बचाकर कलोल, अहमदाबाद और हिम्मतनगर आदि स्थानों में चल रहे पांजरापोल में पहुँचाया।

इसी प्रकार इन्दौर में नवकार परिवार और रेसकोर्स रोड तपागच्छ जैन उपाश्रय ट्रस्ट के द्वारा ईद से एक दिन पहले 68 जीवों को 15 लाख रुपए का भुगतान करके बचाया। उसके बाद उनको गांधीनगर गोशाला एवं जावरा स्थित गोशाला में पहुँचाया।

आशा है कि उनके इस कार्य से और भी लोग प्रेरणा लेंगे और इसी प्रकार जीवों की रक्षा करेंगे। ऐसी मेरी भावना है। सभी अहिंसक भाईयों को मेरी और वीर सेवा मन्दिर, दरियागंज, नई दिल्ली की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

-विनोद कुमार जैन, महामंत्री